अध्याय - 5

"पं. नरेंद्र शर्मा के खंडकाव्य : शिल्पविधान"

अध्याय - 5

नरेंद्र शर्मा के खंडकाव्य - शिल्पविधान

किसी भी कृति में उसके कथ्य या विषय के साथ ही उसके रुप और शिल्प को भी महत्वपूर्ण स्थान रहता हैं। भावपक्ष और कलापक्ष के योग्य संयोग से ही रचना का सौंदर्य अधिक बढता हैं। काव्य के स्वरुप परिवर्तन के साथ ही अभिव्यंजना की पध्दति भी बदल जाती हैं। खंडकाव्य की दृष्टिसे शिल्पविधान में भाषा, प्रतीक योजना, अलंकार योजना, छंद योजना इन बातों का विचार किया जाता हैं। खंडकाव्य की भाषा, सरल, प्रवाही, अर्थगर्भ और प्रसंगानुकूल होनी चाहिए। खंडकाव्य का विषय ऐतिहासिक, पौराणिक, या काल्पनिक और गंभीर होता है। कवि इन विषयोंके आधारपर आधुनिक समस्याओंको स्पष्ट करनेके लिए प्रतीकोंकी योजना करता हैं। काव्य की अभिव्यक्ति शैली स्पष्ट तथा प्रभावशाली होने के लिए वह उचित अलंकारोका प्रयोग करता हैं। साथही कथा में प्रभावात्मकता, तथा सुसम्बध्दता लाने के लिए छंद तथा सर्गोकी योजना करता हैं। इन सभी तत्वोकें उचित संयोग से ही खंडकाव्य की अभिव्यक्ति सशक्त बनती हैं। इन्ही तत्वोकें आधारपर हम प्रस्तुत अध्याय में नरेंद्र शर्मा की चर्चित कृतियों के शिल्पविधान की चर्चा करेगे।

।) भाषा -

अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण माध्यम भाषा हैं। भाषा ही वह साधन है जिसके द्वारा कवि अपने विचारों और भावोंको अपने पाठकोंके पास पहुँचाना है। खंडकाव्य में भी भाषा तत्व महत्वपूर्ण है। भाषा के लिए यह बात आवश्यक हैं कि वह भावानुकूल हो। गंभीर विचारो के लिए भाषा का रुप गंभीर होना चाहिए तथा सीधे-साधे स्पष्ट विचारों के लिए सरल और व्यावहारिक भाषा प्रयोग में लानी चाहिए। सुंदर शैली के लिए सबसे आवश्यक बात शब्दोकें उचित प्रयोग और वाक्य विन्यास के गठन की हैं। दूसरी आवश्यक बात यह कि वह व्याकरण की दृष्टिसे शुध्द परिष्कृत और परिमार्जित होनी चाहिए। यदि भाषा में व्याकरण की अशुध्दियाँ

BABASAHEB AMBEDKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

होगी, शब्दों का गलत प्रयोग होगा, वाक्यरचना अव्यवस्थित होगी तो ऐसी भाषा से पूर्ण काव्य प्रभावात्मक नहीं होगा। अतएव काव्य में भाषा की निर्विवाद रुपसे अपनी महत्ता है, और कविता का प्राण भाव अवश्य हैं। भाषा की कलात्मकता, आकर्षण, संपन्नता, प्रभाविष्णुता, संप्रेषणीयता, एवं उसके भाव गांभीर्य की शक्ति भाषा द्वारा ही सिध्द होती हैं।

इस दृष्टिसे देखा जाय तो नरेंद्र शर्मा की काव्य कृतियों के भाषा सौदर्य का मूल्योंकन करते समय हमें सर्वप्रथम उनकी शब्दयोजना का ही परिचय देना उचित होगा। नरेद्र शर्माजी की काव्य भाषा खडीबोली हैं, उनकी खडीबोली का रुप पूर्णत: सस्कृत निष्ठ हैं। संस्कृत निष्ठ हैं। संस्कृत के प्रति कविका रुझान अधिक होने के कारण संस्कृत के शब्द रत्नों से अपनी भाषा पूँजी में वृध्दि की हैं। कविने अपने काव्य में संस्कृत ,अरबी, फारसी, आदि भाषाओं के शब्दोको ग्रहण किया हैं,तथा हिंदी की आधुनिक कालीन बोलियो में प्रयुक्त होनेवाले आंचलिक शब्दोंका भी प्रयोग किया हैं। उन्होने अपने काव्य में संस्कृत के तत्सम शब्दोके साथ ही कुछ ऐसे नवीन संस्कृत शब्दोका भी प्रयोग किया है। जो हिंदी में अधिक प्रचलित नही है जैसे-- अयोनिजा।, ऋतानुता2, काकुदिक3, सलिल4, होमज्वाला5, रविसुत6, वसुधा7, प्रवज्या8, हुताशन 9, नृपति 10, वत्स 11, झंझा 12, भूतल 13, अक्षम 14, प्रवीण 15, अकर्मण्य 16, एवमस्तु 17, दारुयंत्र।8, बर्हिभार 19, अश्वत्थ 20, अग्रपुरुष 21, जैसे तत्सम शब्दोंका प्रयोग किया गया है। उसीतरह अनेक तद्भव और आंचलिक शब्द भी दृष्टिगोचर होते है उदा. मसान रणथल 23, महारान 24, बदरीवन 25 ।

इसके अलावा कुछ सामासिक शब्दोंका प्रयोग भी दिखाई देता हैं, जैसे नरकुंजरन्याय 26, स्वस्ति मंत्रपाठ 27, फूल मूल सदृश्य 28, युग धर्म कर्म 29, इनके अलावा अरबी फारसी के भी कुछ फूटकल शब्द दिखाई देते है जैसे -- आह 30, असिधारा 31, नरनाह 32, सिरमाथे 33, तमस् 34, जामात 35, आदि। ज्योतिषसंबंधी भी एखाद दूसरा शब्द दिखाई देता हैं जैसे-- केतु 36, रोहिणी 37, इत्यादि। इसतरह श्री नरेंद्र शर्मा के खंडकाव्य में खडीबोली का रुप पूर्णत: संस्कृतनिष्ठ है। कही- कही उसका रुप बहुत ही अधिक दुरुह जान पडता है। उदा. द्रौपदी खंडकाव्य की निम्न पंक्तियॉ--

विगत युग की सुखद सुधि, आ बाहुओं के बीच।
देख मैं कब से पसारे, बॉह, आखे मीच' 38

किसी किसी जगह कविने आपत्तिजनक शब्दोंका प्रयोग किया हैं। इस दृष्टिसे उत्तरजय की निम्न

पंक्तियाँ दर्शनीय हैं-"क्षीण चरण धर्म, दग्ध पद नख हैं धर्मराज।

ध्वंस शेष कुरुकुल की, केशव ही धरे लाज।

अंध तमस प्रलय सिंधु, वासुदेव महामीन।

दृढ हो अजमीठ वंश, द्विज हो कुल परिक्षीण।"39

इसप्रकार नरेंद्र शर्मा की भाषा में एक ओर तो संस्कृत की गूढ तत्सम शब्दावली का प्रयोग है तथा दूसरी ओर कही गूढ तत्सम शब्दावली का प्रयोग हैं। कहींपर अरबी-फारसी भाषा के शब्द अपनी छटा दिखाते है। उपर्युक्त विवेचन के आधारपर हमें शर्माजी के 'द्रौपदी और उत्तरजय' की काव्यभाषा में निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं--

१) **भाषा की लाघवता-** 'द्रौपदी' और 'उत्तरजय' दोनों कृतियोंकी भाषा समासांत पदावली प्रधान और विभक्ति रहित हैं। उसमें लाघव का गुण कूट-कूट कर भरा है। थोडे शब्दोमें उन्होने बहुतकुछ कहा हैं जैसे--

"द्रौपदी जीवनीशक्ति

सौंप दी गई पाँच तत्वोंको।

या कहा नियति ने पार्थ,

करो अब प्राप्त लुप्त सत्वोको।"40

उसी तरह 'उत्तरजय' में भी कविने थोडे से शब्दोमे विशाल भावोकी सृष्टि की है। उदा --

"गुरुवर ने किन्तु क्या विषम चक्रव्यूह रचा?

जुझे छह महारथी, कार्तिकेय नही बचा

होता सौभद्र सौम्य जीवित यदि नर कुमार

दुहराता अंम्बर मे जयी स्वर्ण कर्णिकुमार।'4।

2) **पौरुष और ओजगुण से ओत प्रोत भाषा-** द्रौपदी और उत्तरजय काव्य की भाषा में बडा ओज, बडा पौरुष हैं ,भाषा में मसृणता और कोमलता नहीं हैं, परंतु भाषा में जो शक्ति और वेग हैं वह उनके काव्य की अपनी विशेषता हैं। जैसे--

"युध्द क्षेत्र पर शांति छा गई,

अष्टादश दिन बीतें।

शापित कौरव हारे रण में

वहिसुता वर जीते।"42

सत्य तो यह हैं कि शर्मा जी के इस भाषा शैली में इस्पात की लचक हैं मृणाल तंतुओं की कमनीयता नहीं।

3) **भावानुकूल भाषा-** द्रौपदी और 'उत्तरजय' काव्य के भाषा की प्रमुख विशेषता है कि उन्होंने भावों के अनुरुप अपने स्वरुप को गठा हैं। कहीं उसमें ओजस्विता हैं, कहीं कोमलता हैं, तो कही कठोरता हैं। 'उत्तरजय' में अश्वत्थामा की भाषा में जहाँ बडा ओज हैं, तो धृतराष्ट्र की भाषा में बडी करुणामयी हैं। अश्वत्थामा के हृदय का आवेश और आक्रोश. इन पंक्तियोंमें स्पष्ट होता हैं--

"करता हैं अट्टहास, कुरुपति का सेनापति।
जयति-जयति कौरव दल- द्रुपदों की क्षति-पर क्षति।
करता मैं अट्टहास, सुन ले दिग्देश काल।"43

इसीतरह धृतराष्ट्र के निम्नलिखित कथन में भाषा का रुप मर्मस्पर्शी सहज और स्वाभाविक हैं। जैसे--

"अन्तव्रर्ण रिसता हैं, रुकता हीं नहीं स्त्राव।
रोते हैं रक्त बहा, मन के सौ छिपे घाव।"44

शर्माजी का भाषापर पूर्ण अधिकार था, इसीकारण उन्होंने अपने गहन भावो और विचारों को सामर्थ्य के साथ प्रकट किया हैं। उन्होंने अपने भावों की अभिव्यक्ति सहज सुलभता के साथ की हैं। कहीं भी उसका रुप अस्पष्ट नहीं हैं, कविने कही भी भाषा को गठनेका, सजाने का प्रयत्न नहीं किया हैं।

4) **लोकोक्तियों और मुहावरोंका प्रयोग** - कविने अपनी भाषा में प्रभावात्मकता लाने के लिए लोकोक्तियों और मुहावरोंका भी प्रयोग किया हैं। यद्यपि उनका प्रयोग कम हैं- जैसे द्रौपदी खंडकाव्य की इन पंक्तियों --

फूला न समाया पुरुष,
शक्ति चितवन ने कहाँ 'प्रकृति हूँ।"45

उसी तरह निम्नपंक्तियो में भी यह प्रवृत्ति दिखाई देती हैं--

"श्रीहीन हो गए कर्ण,
हुए कुंडल सुवर्ण के फीकें
पी लिया खून का घूँट

घूटे रह गए भाव सब जी के।"46

उसीतरह--

"कुछ भी न हुआ परिणाम
व्यर्थ आत्मज की खाई हा हा।
आत्मज उनका ही अंश
न छोडा उसने शर बढाना।"47

इसतरह द्रौपदी खंडकाव्य के उपर्युक्त पंक्तियो में फूला न समाया,48 खून का घूँट पीना,49 घुटे रहना,50 हा हा खाना,5। शीश झुकाना,52 इत्यादि मुहावरोका सफल प्रयोग किया हैं। 'द्रौपदी' खंडकाव्य के समान 'उत्तरजय' की निम्नलिखित पक्तियोंमें भी कुछ मुहावरोका प्रयोग दृष्टव्य हैं--

"कहता था, भोगे को भोगो तुम महाराज।
मेरी इस जूठन को पाओ हे धर्मराज।
खाई को खाओगे, गाई को गाओगे।
रिक्त कोष राज्य, मुझे खोकर क्या पाओगे।"53

उसीतरह--

"सुनो पांडुपुत्र सुनो। तुम हो कपटी विडाल।
खाकर सौ सौ चूहें, बजा चुके बहुत गाल।"54

उपर्युक्त काव्य पक्तियोंमें खाई को खाना, गाई को गाना, सौ सौ चूहे खाना, बहुत गाल बजाना जैसे अर्थपूर्ण मुहावरोका प्रयोग किया है।

5) **प्रतीकात्मक शब्दोका प्रयोग-** "द्रौपदी" और उत्तरजय प्रतीकात्मक काव्य होने के नाते उसमें किसी किसी जगह प्रतीकात्मक शब्दोका सफल प्रयोग किया हैं। उदा.--

'दुरचिन्ताओ में डूब,
सोचने लगे भूप सब सब बाते।
शत दीपक मेरे बुझे,
हाय अब बुझे अंधेरी राते।"55

उसीतरह--

मारा षड् रिपुओ ने मिलकर
एक निहत्थे शिशुको,56

उपर्युक्त पक्तियोंमें शत दीपक-सौ पुत्रोंका और अंधेरी राते अंधकारमय भविष्य तथा षड् रिपु आत्मा

के छः वैरी के प्रतीक के रुप में लिए गए हैं। द्रौपदी खडकाव्य के समान 'उत्तरजय' में भी प्रतीकात्मक शब्द दिखायी देते है जैसे-

'समस्वर-आवर्तन से मुक्त पुनः विन्दुनाद,
स्त्रोत स्वर अनाघात, रचना फिर निर्विवाद।
संसृति का ब्रम्हरंध्र ज्योतिदम प्रभुपद का,
भूगिसात ज्योतिसद्म संसृति के संसद का।"57

इसतरह दोनो काव्योंमें कही-कही संतोंकी भाषा शैली के प्रतीकात्मक शब्द दिखाई देते है। जिससे कवि की आध्यात्मिकता की ओर होनेवाली लग्न स्पष्ट होती हैं।

शैली के रुप

शैली की दृष्टि से भी हमे 'द्रौपदी' और 'उत्तरजय' में निम्नरुप देखने को मिलते हैं।

।) **भावात्मक शैली-** काव्य की यही प्रतिनिधि शैली हैं। पात्रो के हृदय उद्‌गारों का आवेश इसी शैली में भली भाँति प्रकट होता है। इस शैली की भाषा ओजस्वी, स्फूर्तिदायक और प्रवाहपूर्ण होती है। शर्माजीने करुण और रौद्र रस की व्यजना में इस शैली का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए 'द्रौपदी खडकाव्य में शकुनि का यह कथन दृष्टव्य है--

"शकुन अच्छा ही हुआ बोला शकुनि धर ध्यान
दिखी प्रातःकाल, प्रस्तर मूर्ति में मुस्कान
शकुन कहता हैं, अँगारा बनेगा कर्पूर
द्रौपदी की चरण रज हो, भानु का सिंदुर।"58

उसीतरह 'उत्तरजय' में भी इस शैली के दर्शन होते हैं--

"हारा मै धर्म और कहलाया धर्मराज
उठा विजय केतु, और गाड गई मुझे लाज।
वेध गई मर्मस्थल, उसकी अंतिम वाणी।
मानधनी दुर्योधन था अतिव अभिमानी।'59

इसतरह द्रौपदी और उत्तरजय दोनो काव्यो में कवि ने भावात्मक शैली का उचित प्रयोग किया

हैं।

2) **अलंकारिक शैली-** काव्य की रस व्यंजना को अधिक तीव्र और प्रभावात्पादक बनाने के लिए बनाने के लिए संवादों की भावात्मक शैली ने ही अलंकारिक शैली का रुप लेकर आया है। इस शैली में उपमा अलंकारो की छटा दिखाई देती हैं। जैसे- 'उत्तरजय' की निम्न पक्तियाँ--

"काया मन ऐसे मिले, मिले मणी कांचन।

आया द्वितीय तप, मिले हृदय को लोचन।"60

अलंकारिक शैली के बहुतसे उदाहरण दोनों काव्योंमें मिलते हैं।

3) **चित्रात्मक शैली-** चित्रात्मक शैलीद्वारा कविने एक कुशल चित्रकार की भाँति थोडे से शब्द संकेतोद्वारा वातावरण, पात्रों के कार्यलाप को मूर्तिमान रुप दे दिया है। इस दृष्टिसे 'द्रौपदी' काव्य की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं--

"अंबिकानंदन करें अब न्याय, बन निस्वार्थ।

प्रतिष्ठित युवराज पदपर क्या नहीं था पार्थ।"61

'उत्तरजय' में भी इस शैली का प्रभाव दिखाई देता हैं--

"चरणों पर शीश धरे, घुटनों पर खडे पार्थ।

सिरहाने खडे कृष्ण, वत्सलता, पालनार्थ।

कृष्ण पार्थ दोनों ने सादर की परिक्रमा

बोले कौंतेय विजन दादाजी करो क्षमा।"62

इसतरह कविने चित्रात्मक शैलीद्वारा पाठकोंके नेत्रोंके सामने दृश्य चित्र खडे किये हैं।

4) **वक्तात्मक शैली**-- काव्य की यह शैली बडी बलवती हैं। यह शैली बडी बलवती हैं। यह शैली ऐसी हैं जैसे कोई वक्ता किसी विषयपर वक्तव्य दे रहा हो। इस शैली में बडा भावावेश होता हैं। "द्रौपदी" खंडकाव्य में की निम्नपंक्तियोंमें इस शैली का सफल प्रयोग दिखाई देता हैं--

"पर उसे भुला दो शकुनि,

कभी जो खेल नियति ने खेला।

युग बदल चुका हैं शकुनि

आज नव युग की मंगल बेला।"63

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

उसीतरह 'उत्तरजय' में भी इस शैली को कविने अपनाया हैं--

"बच-बचकर चलने की बात तुम्हें, चिरंजीव।
पीडा का पान करो, नरशंकर तुम न क्लीव।
पीडा की झंझा से भागो मत महाभाग।
भस्मावृत्त ब्रम्हज्ञान झंझा से उठे जाग।"64

वक्तात्मक शैली में एक ही भाव को अनेक वाक्योंमें दुहराकर भावव्यंजना को बल दिया हैं।

5) **परिचयात्मक शैली-** जहाँ विषय का सीधा सादा प्रतिपादन किया हैं। भाव तथा विषय की दृष्टिसे अभिव्यंजना का विशेष महत्व नहीं होता, वहाँ इस शैली का विधान कविने दिया हैं। जैसे 'उत्तरजय' की निम्नपंवितयाँ--

"मूल मत्र यही, नहीं कर्म धर्म युक्त मनुज।
चार भुजा वाले का माध्यम है सदा द्विभुज।
द्विभुज साध्य कर्म विदित अविदित है कारण बल
फलादेश यही पार्थ, कर्म नहीं हैं निष्फल।"65

परिचयात्मक होते हुए भी इस शैली की भाषा सरल और व्यावहारिक नहीं हैं। उसका रुप संस्कृतनिष्ठ और तत्सम प्रधान हैं।

निष्कर्ष रुप से हम कह सकते हैं कि 'द्रौपदी' और 'उत्तरजय' दोनों काव्यों की भाषा सर्वथा संयत और सुष्ठु है। वह साहित्यिक परिस्कृत और प्रांजल खडीबोली का रुप लेकर आई हैं। नरेंद्रजी की भाषा के सबंध में हम यह यह सकते हैं कि उनकी हिंदी पूर्णतः संस्कृतनिष्ठ, तत्समप्रधान, और एकरस है। कहीं-कहीं जगह वह चिंतनपूर्ण गहन विचारों को प्रकट करती हुयी दुरुह और क्लिष्ट बन गई हैं, फिर भी भाषा भावानुकूल हैं। उसमें कृत्रिमता और आडंबर नहीं, सहजता और स्वाभाविकता हैं।

प्रतीक विधान-

प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तुके लिए किया जाता हैं जो किसी अदृश्य विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती हैं।"66 अर्थात किसी अन्य स्तर की समानुरुप वस्तुद्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करनेवाली वस्तु प्रतीक है। साधारण तौरपर प्रतीकोंद्वारा अप्रस्तुत वस्तुओका बोध कराया जाता हैं। खंडकाव्य में प्रतीकों की सहायता से किसी समस्याको प्रकट किया जाता हैं। यहाँ हम इस बात की चर्चा करेंगे कि नरेंद्र शर्मा के प्रस्तुत कृतियो में प्रतीक योजना कहाँतक सफल हो गयी हैं।

'द्रौपदी' की कथावस्तु में महाभारत की कथा के एक महत्वपूर्ण अंश को लेकर उसकी घटनाओं और पात्रो की प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए मानव जीवन के कुछ

शाश्वत मूल्योंको उठाने का तथा अपना अध्यात्मिक दृटिकोण प्रस्तुत करनेका प्रयास किया हैं। महाभारत के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, और सहदेव आदि पात्र परंपरागत लोकमानस में विभिन्न विचार धाराओं के मांसल प्रतीक रहे है।"67 कवि की दृष्टिसे होमकुमारी द्रौपदी, युधिष्ठिर आदि पाँचो पांडव पृथा और सूर्य देवता धृतराष्ट्र उसके शतपुत्र, कर्ण, सुबलसुता गांधारी, यज्ञपुरुष नारायण तथा शकुनि आदि विभिन्न पात्र महाभारत की कथा के यथास्थित पात्र ही नहीं हैं अपितु अपने स्वभाव, कर्म और स्वरुप के सदर्भ में सनातन दैवी और आसुरी कृतियों के जीवन प्रतीक हैं। प्रतीक पध्दति की योजना से वे नाम से भले ही पुराने हो परंतु विचार बिदुओं के तेज से वे सर्वथा नूतन है। 68 द्रौपदी की रचना करते समय महाभारत की कथा को दुहराना कवि का उद्देश्य न होकर उनकी रुचि तो अर्थभरे और आत्मतेज से दीप्त उन काव्यप्रतीक रत्नों की ओर विशेष रुपसे आकर्षित हुई है जो आज भी हमारी अंधकारावृत्त कंटकित जीवन वीथियों को प्रकाश दे सके।

कविने द्रौपदी को जीवनीशक्ति का शाश्वत प्रतीक माना हैं। तथा पाँच पांडव पाँच महातत्व के प्रतीक हैं जैसे--

"द्रौपदी जीवनीशक्ति
सौप दी गई पाँच तत्वोको।
या कहाँ नियति ने पार्थ
करो अब प्राप्त लुप्त सत्वोंको।"69

यहाँ पाँच पाडवो में से युधिष्ठिर आकाशतत्व, भीम, वायुतत्व, अर्जुन अग्नितत्व, नकुल जलतत्व और सहदेव पार्थिव तत्व के प्रतीक हैं। द्रौपदी रुपी जीवनीशक्ति इन्हें सश्लिष्ट कर चैतन्य की ज्वाला भरती हैं। धृतराष्ट्र अवचेतन , अप्रकेत मानस के प्रतीक है तथा उनके सौ पुत्र उसकी अंध नग्न वासनाओ के प्रतीक हैं । कुंती पृथामाता अर्थात पृथ्वी का प्रतीक हैं जिन्हें देववहन शक्ति प्राप्त हैं। कुंती का अवैध पुत्र कर्ण अवैध भाव है। शकुनि मानस में स्थित तमस तत्व का प्रतीक है। उसीतरह विदुर हृदयस्थ विवेक तथा गाधारी सद्मति और भीष्म पितामह पाँच तत्वोंसे निर्मित पार्थ तथा शत् इच्छाओवाले अंधमानस के केद्ररुप में स्थित भाव के प्रतीक है।

पात्र प्रतिकोके अतिरिक्त आध्यात्मिक भाव के प्रतीको की योजना भी प्रस्तुत खंडकाव्य मे हैं। जैसे--

'कृष्ण भीमसेन बलवीर,
साम है अर्जुन व्रती धनुर्धर।

हैं यजुर्वेद ही नकुल,

धीर सहदेव अथर्व धुरंधर।"70

पाँचो पांडवोंद्वारा पुरुषार्थ प्रदर्शन के इस महायज्ञ में चारों वेदोंने योगदान दिया। इसमें ऋग्वेद बलवीर, भीमसेन, सामवेद व्रती धनुर्धर अर्जुन है, यजुर्वेद नकुल हैं तो अथर्ववेद- वीर सहदेव है। दूसरी - ओर दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के शतपुत्र असुरि शक्ति के प्रतीक हैं। जैसे-

"अंकुरित अंध वह प्रवृत्त

सुयोधन का ही तन मन धर कर।

दुर्योधन ही धृतराष्ट्र,

अंधेरे का अभावमय अंतर।"7।

इन पंक्तियोंमें अंध और अंधेरे दोनों शब्द आसुरि शक्ति के लिए प्रतीक रुप में स्वीकार किए हैं। महाभारत के पात्रों में शकुनि अपनी कुटिल दुरभिसंधियों और दुर्भावनाओं के लिए प्रसिध्द हैं। पांडवों के लिए कृष्ण का विवेकपूर्ण सहाय प्राप्त होता हैं तो कौरवों को शकुनि की दृष्टतापूर्ण दुरभिसंधि। शकुनि गांधारी का सहोदर भाई हैं, पर दोनों के आचार विचार में भारी विषमता दिखाई देती हैं। गांधारी के हृदय में पांडव तथा द्रौपदी के प्रति ममता हैं तथा अपने पुत्रों के प्रति तिरस्कार। गांधारी और शकुनि सृष्टि के दो विरोधी तत्वों के प्रतीक हैं। निम्न पंक्तियोंमें उनके स्वभाव की यह विशेषताएँ दर्शित होती हैं--

"शकुन अच्छा ही हुआ "बोला शकुनि धर ध्यान।

"दिखी प्रातःकाल प्रस्तर मूर्ति में मुसकान।

कुछ न बोली द्रुपदतनया शकुनि का मुख देख।

बहनभाई में नियति ने लिखे हैं दो लेख।

हैं नहीं जन्मांध श्रध्दा, दृग किए हैं मूँद।

महादेवी के लिए प्रत्येक क्षण मधु बूँद।"72

जैसे सत, रज और तम् इन तीन विषय तत्वों की प्रक्रिया से सृष्टि निरतर गतिशील होती हैं। शकुनि और गांधारी के विचार दर्शन उसीके प्रतीक हैं।

उपर्युक्त प्रतीकों के अलावा युधिष्ठिर का द्युतप्रेम, द्रौपदी को दॉवपर चढाना और उनकी हार भी मूलतः विशिष्ट विचार के प्रतीक हैं। जब मनुष्य किसी मार्गपर अग्रसर होता हैं और इस अवस्था में यदि उसे आरंभिक सफलता प्राप्त हो जाती हैं तो वह प्रसन्न होकर दैवी

साधनों को अपने ही उपकरण मानने लगता हैं। उसमें अहं की भावना उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे --

"निश्चेष्ट युधिष्ठिर जेष्ठ,
श्रेष्ठ आकाशपुरुष अविकारी,
कामार्थ भाव से मुक्त,
विवेकी हैं पर अव्यवहारी।"73

अपनी इस अहं के कारण वह दैवप्रदत्त शक्तियों को अपनी रमणेच्छा और अहं की तृष्टि के लिए दॉवपर लगाने के लिए प्रस्तुत हो जाता हैं--

"युधिष्ठिर आकाश की ही तरह शून्य विकार।
वह न जाने अस्थि - पॉसे फेकता संसार।"74

उपर्युक्त पक्तियोंमे चित्रित युधिष्ठिर का द्युतप्रेम मनुष्य की अहं भावना का प्रतीक हैं। जिसके अधीन होकर मनुष्य अविचारी तथा अव्यवहारी बन जाता हैं।

कविने महाभारत को धर्मयुध्द की संज्ञा दी हैं और यह उचित ही हैं। पांडवों और धृतराष्ट्र पुत्रों का सारा संघर्ष धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय और विवेक जडता की दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किया हैं। इस धर्मयुध्द में विजय धर्म-न्याय और विवेक की होती है। धर्म और न्याय की रक्षा के लिए किया गया बडे से बडा बलिदान भी तुच्छ मालूम पडता हैं। महाभारत का नरसंहारी युध्द महान बलिदानों का इतिहास हैं। जैसे--

"सुबल-सुता सुतहीना सो ही,
दिखी हुताशन जाता।
कुंन्ती की गोदी में बैठी,
दिखी परिक्षित माता।
वार्ष्णेयी पांचाली, कुंती,
गांधारी के कारण।
अंत अनंतविजय का स्वामी।
क्षेत्र जयी कहलाया।"75

नर की विजय का मुल्य नारी सदा चुकाती आयी हैं। अपनी अपरिचित दहन और सहनशक्ति से। पृथा माता ने अपने वैधपुत्रो के लिए कर्ण जैसे तेजस्वी पुत्र की बलि दी। सुभद्रा ने अभिमन्यु की, द्रौपदी ने पॉच पुत्रो की और सुबल सुता गांधारी ने सौ पुत्रों को होम कर दिया। इसतरह कविने महाभारत के युध्द को धर्मयुध्द का प्रतीक तथा नारी को दहनशक्ति का प्रतीक माना हैं।

द्रौपदी की भॉति उत्तरजय में कवि ने अपने काव्य की सामग्री प्राचीन

भारतीय जीवन से ग्रहण की हैं। उत्तरजय के पात्र भी पौराणिक और ऐतिहासिक है। फिर भी कवि अपने युग की प्रवृत्तियों से अछूते नही रहें। प्राचीन काल के कथानकों और पात्रों को लेकर कविने आजके युग की समस्याओ पर विचार किया है।

कविने उत्तरजय की रचना 1965 के नए वर्ष मे की है। स्वतंत्रता को प्राप्त किये हमें अठारह वर्ष हो गए थें। इन अठारह वर्षोमें हमने बहुत कुछ खोया और बहुत कुछ पाया। जनतंत्र का आदर्श लिए देश में स्थिर शासन बना रहा। आर्थिक क्षेत्र में हमने प्रगति की। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी हमारी ख्याति बढी। अहिंसा, मैत्री और प्रेम के बलपर हमने स्वतंत्रता की लडाई लढी और स्वतंत्रता प्राप्त का संदेश हमने स्वतंत्रता के प्राप्ति के पश्चात विश्व को दिया। राष्ट्र के कर्णधार पं. जवाहरलाल नेहरु ने विश्व शांति के मसीहा के रुप में पंचशील का नारा संसार को दिया। पर तभी चीन का पाशविक आक्रमण हमारे देशपर हुआ। इस अप्रत्याशित आक्रमण ने हमारे देश की शक्ति को झकझोर डाला। हमें ज्ञान हुआ कि राजनीति के क्षेत्र में कोरी भावुकता और आदर्श से कार्य नही चलेगा। शत्रु प्रेमकी भाषा नही समझता उसके लिए शस्त्रका प्रयोग करना आवश्यक है।

'उत्तरजय' की कथा का प्रस्तुतिकरण प्रतीकात्मक रुपसे किया हैं। यहाँ युधिष्ठिर आदर्श शासक के प्रतीक हैं, तो श्रीकृष्ण को कवि ने नारायण का रुप दिया है। 'उत्तरजय' काव्य में युधिष्ठिर को कहे गये श्रीकृष्ण के शब्द युधिष्ठिर के लिए नहीं समस्त देश के लिए आव्हान स्वरुप है कि--

"भारत को होना है, केशव का अनुयायी।"76

जिसप्रकार कृष्ण ने कंस, शिशुपाल, नरकासुर जैसे राक्षसों का संहार किया था, अनीति और अनाचार के विरुध्द शस्त्र उठाया था, उसी प्रकार चीन जैसे शत्रु को मुँहतोड जबाब देने के लिए हमें भी शस्त्र का, शक्ति का प्रयोग करना पडेगा सच्चा राजधर्म यही है।

कवि ने आश्वत्थामा को पीडा प्रतीक माना है। आज के युग में अश्वत्थामा जैसे पीडा भीरु भी लोग है, जो दुखो को अपनाना नही चाहते, उससे बचना चाहते है। श्रीकृष्ण का अश्वत्थामा के प्रति कथन है--

'बच-बचकर चलने की बात तुम्हें चिरंजीव।
पीडा का पान करो, नर शंकर तुम न क्लीव।"77

अश्वत्थामा जैसे पीडा भीरु लोग स्वयं के दुखो से बचने के लिए दूसरो को कष्ट पहुँचाना चाहते हैं। जब की मनुज मात्र का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह दूसरों के दुखों को स्वयं अपनाकर उसे

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY

दूर करनेका प्रयत्न करें। दूसरे के सुख दुख को अपना सुख दुख समझे तभी मनुष्य सच्चा मनुष्य बनेगा।

कविने अभिमन्यु को चंद्रमा का अवतार कहा है। चंद्रमा मानस से उत्पन्न हैं। इसलिए 'उत्तरजय' में अभिमन्यु के लिए धर्मराज द्वारा मनोजात और मानव जैसे शब्दोंका प्रयोग किया हैं। 78

पृथा या कुंती पांडवों की माता हैं इस काव्य में वे पृथ्वी माता का प्रतीक हैं। धर्मराज युधिष्ठिर पृथ्वीमाता के रुप में उनकी वंदना करते हैं और कहते हैं-

'समरयज्ञ पूर्ण हुआ, चुर्ण हुआ अहंकार।
पृथ्वी की सेवा ही माता का हृदय द्वार।"79

पं नरेद्र शर्मा जी ने उत्तरजय में द्रौपदी खंडकाव्य की कथा आगे का वर्णन किया है फलस्वरुप द्रौपदी काव्य में आए कुछ प्रतीकात्मक पात्र यहाँ भी दिखाई देते हैं। जैसे पाँच पांडव पाँच तत्वोंके प्रतीक है, द्रौपदी जीवनीशक्ति का प्रतीक हैं। इसके अलावा दुर्योधन आदि सौ कौरव धृतराष्ट्र के अंधमानस के प्रतीक है।

'उत्तरजय' में अध्यात्मिक प्रतीको का प्रयोग भीा प्रचुर मात्रा में किया गया हैं। कवि ने भीष्म पितामह को "परंपरा पुरुष सिह"80 माना हैं। युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से कहते हैं--

'चलो अग्रपुरुष कृष्ण, पार्थ सदा अनुयायी।
बुला रहें परंपरा पुरुष-सिंह शरशायी।
लोकयज्ञ , क्रिया यज्ञ, देह यज्ञ, गेह यज्ञ।
क्या है अधिभूत पंचभूत यज्ञ रहा अज्ञ।
यज्ञपुरुष साक्षी हो, पाना है मुझे ज्ञान। '8।

इसमें लोकयज्ञ संसार का कर्तव्य कर्म, देह यज्ञ-शरीर के कर्म, गेह यज्ञ- परिवार के कर्म, तथा यज्ञपुरुष श्रीकृष्ण का प्रतीक है।

राजा के गुणों और कर्तव्यों का वर्णन करते हुए अध्यात्मिक प्रतीको का सफल प्रयोग किया हैं जैसे--

'काकुदिक काम, क्रोध, कीर कामवाहन का।
नयन मोह भोगलुब्द दुरुपयोग साधन का।
इच्छा मद वर्हिभार- मान क्रुर दुर्मत्सर

मन मोहक अहंकार, चाटुकार स्वार्थी नर।"82

इसमे काकुदीक मौन विकार, भोमबुद्- लालची, मदनशा तो नयनमोह नेत्ररुपी मोह के प्रतीक है।

कविने प्राकृतिक प्रतीकों का भी प्रयोग किया हैं। जैसे--

"सुर्योदय हुआ, तिमिर मावस का लुप्त हुआ

कुरुकुल गज विग्रह के ग्राह से विमुक्त हुआ।"83

उपर्युक्त काव्यपक्तियोमे सुर्योदय- उजाला का, तिमिर अंधकार का तथा विग्रह लढाई का प्रतीक है। युधिष्ठिर के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए कविने स्पष्ट किया हैं--

"भीम न कोई और युधिष्ठिर।

धर्मराज के ही वह प्राण।

अर्जुन उसके बाहु, नकुल सहदेव

युगल युग चारण समान।"84

इसमें युधिष्ठिर प्राण, भीम-शक्ति, अर्जुन-भुजा, और नकुल सहदेव पैर के प्रतीक हैं। सक्षेप में उत्तरजय की प्रतीक योजना में कवि पूर्णतः सफल रहा है।

इसप्रकार प्रस्तुत दोनों कृतियों की प्रतीक योजना में कवि को पर्याप्त सफलता मिली हैं। इनमें पात्र प्रतीक और शब्द प्रतीक के सुंदर उदाहरण हैं।

अलंकार योजना--

अलंकार काव्य का अनिवार्य तत्व है। कवि हृदय में जब भाव उमडते है तभी वह उनको अभिव्यक्त करना चाहता है। अपनी इस अभिव्यक्ति को अधिक से अधिक रोचक सुंदर और आकर्षक बनाना चाहता है। वास्तव में काव्य की सौंदर्य वृध्दि के लिए अलंकारो का होना अनिवार्य है। भाषाशैली तथा भावो को मनोरम बनाने के लिए इस काल में कवियोंने अपने काव्य में आवश्यक अलंकारों का प्रयोग किया हैं। वास्तव में अलकार वाणी के विभूषण है, इनके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभाविष्णुता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौंदर्य का संपादन होता हैं। अलंकारो की इसी महिमा को ध्यान में रखकर पं. नरेंद्र शर्मा ने अपने काव्यको अलंकारो से विधिवत् सजाया हैं। कविने अपने काव्य में की अलंकार योजना में प्रचलित परिपाठी का पालन न करके सर्वथा नवीनता का दर्शन कराया है।

द्रौपदी काव्य की अलंकार योजना भावानुकूल तथा प्रसंगानुकुल बनी है। काव्य में चमत्कारपूर्ण अलंकारो में वास्तव में नरेद्रजी की वृत्ति अधिक नही रमी, उन्होंने भावोंकी

की अभिव्यंजना के लिए जहाँ आवश्यक समझा वही अलंकारो का सहारा लिया है। पात्रों के भावचित्रण में उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, यमक आदि अलंकारो का बडा सफल प्रयोग किया है। उपमा तो नरेंद्रजी का प्रिय अलकार है। कविने पांडवलक्ष्मी द्रौपदी की उपमा कौरव कुल की उल्का से की है।" 86 नारी के लिए कृत्या, उर्वशी, जननी, जाया, माया की उपमा देकर उसकी महानता का वर्णन किया है। उपमा के अतिरिक्त यमक अलंकारों भी प्रयोग प्रस्तुत कृतियों में किया हैं। जैसे -

विश्वकर्मा- पुत्र मय से मिला शिल्प अनूप।

भूप दुर्योधन- युधिष्ठिर भूप के भी भूप। 87

यहाँ भूप शब्द के दो अर्थ है पहिले का अर्थ है राजा तथा दूसरे का अर्थ राजा का राजा है। उसीतरह निम्नलिखित पक्तिंयोमें भी यमक अलंकार का सुंदर प्रयोग किया है। जैसे--

"सत्य-निष्ठ हो, सत्यनिष्ठ है,

देखो अन्तंर्तम में।"88

उपर्युक्त पक्तियोमें पहले सत्य-निष्ठ का प्रयोग सत्य के लिए निष्ठा रखनेवाले तथा दूसरे सत्यनिष्ठ का प्रयोग धर्मराज के लिए किया गया है। इसके अलावा निम्न पक्तियोंमें भी यमक अंलकार का प्रयोग दर्शनीय है।

"पास जिनके शकुनि, यमके दूत उनके पास थे।

सौ बली के सौ बलि सुन सुबलसुत के दास थे। 89

इन पंक्तियोमें आए पहले सौबलि का अर्थ गांधारी तथा दूसरे सौ बलि का अर्थ कौरव है।

उत्तरजय में भी कविने शब्दालंकारऔर अर्थालंकार का सुंदर प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास अलंकार की प्रमुखता है।

शर्माजीने अपने काव्य में अपुप्रासो की पग-पगपर योजना की है। उदा--

'काकुदीक काम, क्रोध कीर कामवाहन का। '90

उसीतरह--

क्या है कर्तव्य कार्य, कार्यो का क्या कारण,

कर्गो को जान किया धर्मोका ध्रुवधारण।' 9।

उपर्युक्त पक्तियो में अनुप्रास अलंकार का सफल प्रयोग देखने को मिलता हैं। शब्दालंकारो में यमक और श्लेष के भी दो एक उदाहरण देखने को मिलते है--

है वह साक्षात् धर्म, जिससे यह धरा, धरा।

बदरीवन बीच वहाँ पुरुषोत्तम प्रकृति परा।"92

यहाँ धरा शब्द के दो अर्थ हैं। पहिले का अर्थ पृथ्वी और दूसरे का अर्थ धारण की हुई है। इसके अलावा श्लेष का उदाहरण इन पक्तियों में देखा जा सकता है जैसे--

"तुम हो आकाश तत्व, प्राणतत्व नकुल भीम।
अर्जुन ही अग्नितत्व - भूजयंत शौर्य सीम।"93

यहाँ जयंत शब्द के दो अर्थ है एक तो इन्द्र के पुत्र जयंत और दूसरा विजय प्राप्त करनेवाला।

कवि ने अपने काव्य में अर्थालंकारो का भी सफल प्रयोग किया है। निम्नपक्तियोंमें उपमा का प्रयोग देखिए--

धूमशिखा सदृश्य केश, योग, अग्नि-सी सतृष्णा।
दक्षिण में धर्मराज पार्थ यज्ञपुरुष कृष्ण।"94

इन पंक्तियोमें द्रौपदी के काले केश के लिए 'धुएँ की अग्नि की उपमा दी है। उसीतरह कविने प्रकृति से भी उपादान जुटाये हैं। जैसे पुत्र और माता के नाता के लिए 'फुल मूल सदृश्य 95 - की उपमा देकर उसकी निर्ममता को साकार किया हैं।

उत्प्रेक्षा का भीा सफल प्रयोग कवि ने किया है। शत्रुओं के लिए युध्द की अंतिम रात्रि साक्षात् मृत्यु बनकर आयी हैं के लिए "आई हैं यम बनकर रण की अंतिम यात्रा"96 मे उत्प्रेक्षा का प्रयोग किया हैं। उसीतरह "जो सुषुप्ति बने स्वप्न, सत्य बन जाये।"97 में भी उत्प्रेक्षा का सफल प्रयोग किया हैं।

रुपक नरेंद्रजी का प्रिय अलंकार हैं। अन्य अपेक्षित विशेषताओं के अतिरिक्त उनके रुपक विधान की विशेषता यह है कि उपमा की भाँति उन रुपकों में आनेवाले उपमानो तथा उत्प्रेक्षाओा में भी बडी व्यापकता हैं। 98 रुपक का एक उदाहरण--

"किन्तु नही गुरुवर का चक्रव्युह भंवर बना।
डूब गया शोणित में स्वर्ण देह स्वेद सना।"99

उपर्युक्त पंक्तियोमें चक्रव्यूह भंवर में गुरु द्रोणाचार्य की तुलना चक्रव्यूह के रुप में की गयी हैं। उसीतरह "भाव भरी गगरी"।00 में विविध कामनाओं से भरा मन का रुपक, "तो "जाता हूँ धर्मराज, दूर तिमिर नगरी से"।0। में तिमिर नगरी की कल्पना दुख के अंधकार में भरी संसार रुपी नगरी के रुप में की है।

उपर्युक्त अलंकारो के अलावा पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का भी कवि ने प्रयोग किया हैं जैसे--

'शोणित का बिंदु-बिंदु करता दारुण पुकार' ।02 में बिंदु शब्द की पुनरुक्ति हुयी है। इसके अलावा 'मानवीकरण' ।03, रा भी सुंदर प्रयोग किया है। कविने इन दोनो कृतियो में अलंकारों का इतनी सहजता से प्रयोग किया है कि ऐसे लगता है जैसे प्रस्तुत कृति में अलंकार बिना बुलाए ही आ गए हैं।

छंद योजना-

भाषा में कविता के माध्यम से एक निश्चित गति प्रदान करनेका महत्वपूर्ण कार्य छंद करते है।' अक्षर, अक्षरोकीं संख्या एवं गुरु यात्रा, मात्रा गणना तथा यति गति आदि से संबंधित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्यरचना छंद कहलाती हैं।' ।04 यद्यपि स्वय श्री नरेद्र शर्मा ने आधुनिक कवि भाग - 9 की भूमिका में अपने शिल्पविधान के संबंध में यही मत प्रकट किया है कि "शैली या भाषा की दृष्टि से मैने अपने काव्य को एकही साँचे में ढालना नही चाहा रचना को ढाँचे में ढालने के बाद मै साँचे को तोड देने का पक्षपाती रहा हूँ।"।05 काव्य रुपो की योजना की दृष्टिसे नरेंद्रजी की काव्य कृतियो का मूल्यांकन करते समय हम इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि अनुपम वैविध्यता के दर्शन होते हैं।

नरेंद्र शर्मा एक ओर उत्कृष्ट गीतकार के रुपमें प्रसिध्द हैं, तो दूसरी ओर उनकी रचनाओं में उत्कृष्ट प्रबंध शैली के भी दर्शन होते हैं। फलस्वरुप नरेंद्रजीकी छंदयोजना भी सराहणीय हैं। उन्होंने अपने काव्य में छंदो का विशेष ध्यान रखा है। उनकी छंद योजना भाव एव भाषा के सर्वथा अनुकुल हैं। उसमें गति, ताल एवं लय का पूर्ण निर्वाह हुआ हैं, और मात्रा क्रम कहीं भी विकृत नहीं होने दिया। "द्रौपदी" के सभी छंद तुकांत है। उसमें एकही प्रकारके छंदों को स्थान नहीं मिला हैं। जैसे प्रथम सर्ग की यह छंद योजना --

"नारायण का नर सखा,
वरेण्या नर की होमकुमारी।
है याज्ञसेनि द्रौपदी,
बंधु कृष्णा के कृष्णमुरारी।"।06

तृतीय सर्ग में कविने अपनी छंद रचना में परिवर्तन किया हैं। जैसे--

"महादेवी ने कहा कुछ, द्रौपदी थी मौन।
हुआ मौनालाप, पर क्या हुआ जाने कौन।"।07

'द्रौपदी' खंडकाव्य के अंतिम सर्ग में छंदों का आकार बडा हैं जैसे --

"युध्दक्षेत्र पर शांति छा गई,
अष्टादश दिन बीते,
शापित कौरव हारे रण में,
वहिसुता वर जीतें।
कुररी सी रोती कौरवीयाँ,
रुदन न हृदय समाता
वीर पडे सो रहे विजन में,
भूरे पूरे घर रीते।"।08

'द्रौपदी' काव्य की छंद रचना में यह विशेषता हैं कि कविने एक सर्ग में पहले से जिस छंद को अपनाया हैं, उसमें सर्ग के अंततक परिवर्तन नहीं किया। कविने अपनी छंद योजना के बीच-बीच में कहीं-कहीं गद्य का प्रयोग भी किया हैं। जैसे--

"जीवन क्या हैं? बस खेल।
खिलौना हैं चतुरंगी मानव।
या उसे दॉवपर लगा,
खेलेने खेल देवता दानव।"।09

इसप्रकार 'द्रौपदी'में छंद योजना में कवि को अच्छी सफलता प्राप्त हुई हैं।

'उत्तरजय' काव्य की छंद योजना की सबसे बडी विशेषता तो यह हैं कि वह भाव और भाषा के सर्वथा अनुकूल हैं। भाव और भाषा में जैसी कसाावट हैं, वैसे ही छंद में सजावट हैं। मात्रा अक्षरों की दृष्टि से छंदों का आकार बडा नहीं हैं। कुछ छंदों का आकार तो बहुत ही लघु हैं। प्रारंभ में प्रवेश-सूत्र, 'प्रत्यावर्तन', 'नियतिचक्र', और अंत में प्रसिध्दी शीर्षक अंश के छंद - जिसमें पूरे छंद में कुल मिला कर 64 लगभग मात्राएँ हैं और चालीस के लगभग अक्षर है। वस्तुतः कविने इस छंद के माध्यम से थोडे में अपनी बहुत बात कही हैं।

'उत्तरजय' काव्य के सभी छंद तुकांत हैं। अनुकांत छंदों को कवि ने स्थान ही नहीं दिया हैं। परंतु यह तुकांत रुप तुक के निर्वाह मात्र के लिए ही नहीं हुआ। छंदों का तुकांत रुप सहज और स्वाभाविक स्म लिए हुए हैं। कविको उनके लिए किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पडा। भावों के आवेग में, भाषा के प्रवाह में,छंदों की गति में तुक ने अपना स्थान स्वतः ही बना लिया हैं।

'उत्तरजय' की छंदयोजना गति, ताल, लय, ये युक्त हैं। मात्रायुक्त कहीं

SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR

टूटते नही पाया हैं, इसतरह शास्त्रीय दृष्टि से भी छंदयोजना पूर्ण निर्दोष हैं। इस काव्य में एक ही प्रकार के छंदों को स्थान हीं मिला हैं। उसमें विविधता है, प्रवेश-सुत्र 'प्रत्यावर्तन 'नियतिचक्र', प्रसिध्दि, शीर्षक अंश में छंदो का जो रुप हैं, वह अमर्ष-विषाद प्रतिशोध स्वीकृति आदि शीर्षक अंशों में बदल गया हैं। इन छंदो का अपेक्षाकृत बडा हैं। बीच- बीच में लघु आकार के छंदों के दर्शन होते हैं। जैसे 'स्वीकृति शीर्षक अंश में धृतराष्ट्र के कथन की यह छंद योजना-

"संजय हो राजसभा। मंगल के सजे साज,
भद्रासेन मेरु, छत्र, उत्तर कुरु स्मित सहर्ष,
झले चॅवर केतूमल-संयुत-भद्राश्व वर्ष।"।10

कविने छंद योजना के बीच- बीच में कहीं कहीं गद्य का प्रयोग भी किया हैं। उदा--

विदूर,
अग्रज।
धृतराष्ट्र
आ गए विदूर
विदूर
प्रस्तुत हूँ भारत मणि।"।।।

इसप्रकार के गद्यात्मक कथन स्वतंत्र नहीं हैं क्योंकि इनका प्रयोग संबोधन स्वरुप ही हुआ हैं। और इनके कारण काव्य में नाटकीयता आ गयी हैं। साथ ही ऐसे कथन भी दूसरी पंक्ति के साथ प्राय: तुकांत रुप लिए हुए हैं, जैसे--

"गांधारी,
मैंने क्या किया।
कृष्ण,
किया मैंने क्षोभ नाश।
धृतराष्ट्र
कृष्ण तुम्हीं रीति, नीति, तुम्ही भीति, प्रीति पाश।"।।2

निष्कर्ष रुप से हम कह सकते हैं कि नरेंद्र जी की छंद योजना पर गीतशैली का प्रभाव है। गीतों में जो प्रभाव , जो अन्विति, जो सूक्ष्मता होती हैं वह सब इन छंदों में हैं।

अतः यह बात स्पष्ट हो जाती हैं कि दोनों कृतियों में लय और तुक की दृष्टि से कवि सफल रहा है।

सर्ग योजना-

खंडकाव्य में सर्गबध्दता के नियम में शिथिलता होती हैं। खंडकाव्य का वस्तु विस्तार सीमित होता हैं, वह एक घटना मात्र पर आधारित होता हैं। इसलिए उसके सर्गीकरण को विद्वानोंने आवश्यक नहीं माना इस दृष्टिसे देखा जाय तो नरेंद्र शर्मा ने द्रौपदी' खंडकाव्य की कथावस्तु को पाँच सर्गोमें विभाजित किया हैं। और उनके लिए एक, दो, तीन, चार, पाँच के क्रम में रखा हैं।

'उत्तरजय' की कथावस्तु को कविने बारह अध्यायों में विभाजित किया है प्रत्येक अध्याय का नामकरण उस अध्याय की कथा की विशेषता के आधारपर किया हैं, जैसे -'प्रवेश-सूत्र' , प्रत्यावर्तन', 'नियतिचक्र', अमर्ष-विषाद, प्रतिशोध, परिणति, स्वीकृति, साधन, साध्य, समुदय, सिध्दि, प्रसिध्दि आदि। इसतरह कविने 'उत्तरजय' में सर्गों के स्थानपर अध्यायों में कथा विभाजन किया हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधारपर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रस्तुत दोनों कृतियों की भाषा संस्कृतनिष्ठ होने पर भी अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में सफल रही हैं। दोनों चर्चित कृतियाँ पौराणिक कथा को नये दृष्टिकोण तथा कविका अध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करनेवाली हैं। वस्तुतः दोनों कृतियों में प्रतीकात्मकता है। पात्र प्रतिकों को साथ ही कवि ने शब्द प्रतीकों का भी सफल रुप में प्रयोग किया हैं। लगभग दोनों कृतियों में अलंकारों का सफल प्रयोग किया हैं जो अपनी सहजता और स्वाभाविकता के कारण कथ्य के सौंदर्य और प्रभाव को बढ़ाता हैं। उपमा और रुपक इन अलंकारों का प्रयोग कविने विशेष रुप से किया हैं। छंद योजना से कवि पूर्णतः सफल रहा हैं।

संक्षेप में हम निस्संदेह कह सकते हैं कि पं. नरेंद्र शर्मा को 'द्रोपदी' तथा 'उत्तरजय' के शिल्पविधान में अच्छी सफलता मिली हैं।

----------*----------*----------*----

संदर्भ - सूची

1) नरेंद्र शर्मा - द्रौपदी पृ. 51 सं. 1986.

2) वही पृ. 71

3) नरेंद्र शर्मा- उत्तरजय - पृ.39 सं. 1966.

4) नरेंद्र शर्मा- द्रौपदी पृ.28 सं. 1986

5) वही पृ.28.

6) वही पृ. 33.

7) वही पृ. 48.

8) वही पृ.53.

9) वही पृ.54.

10) वही पृ. 47.

11) नरेंद्र शर्मा- उत्तरजय-पृ.15 सं.1966.

12) वही पृ.19.

13) वही पृ.24.

14) वही पृ.27.

15) वही पृ.28.

16) वही पृ.31.

17) वही पृ.34.

18) वही पृ.36.

19) वही पृ.39.

20) वही पृ.35.

21) वही पृ 43.

22) वही पृ.13

23) वही पृ.20

24) वही पृ.30.

25) वही पृ.53.

26) वही पृ.20.

27) वही पृ.35.

28) वही पृ.39.

29) वही पृ.53.

30) वही पृ.22.

31) वही पृ.26.

32) नरेंद्र शर्मा - द्रौपदी पा. 45 सं. 1986.

33) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय पृ.36 सं.1966.

34) वही पृ. 39. सं. 1966.

35) नरेंद्र शर्मा - द्रौपदी पृ.45 सं. 1986.

36) नरेंद्र शर्मा - उत्तरजय पृ. 16 सं.1966.

37) नरेंद्र शर्मा-द्रोपदी पृ.28 सं. 1986.

38) वही पृ.43.

39) नरेंद्र शर्मा - उत्तरजय पृ.39 सं. 1966.

40) नरेंद्र शर्मा द्रौपदी पृ. 27 सं. 1986.

41) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय- पृ.17 सं. 1966.

42) नरेंद्र शर्मा द्रौपदी पृ. 59. सं.1986.

43) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय पृ. 22 सं. 1966.

44) वही पृ. 36.

45) नरेंद्र शर्मा- द्रौपदी पृ.31 सं. 1986.

46) वही पृ.34.

47) वही. पृ.37.

48) वही पृ. 31.

49) वही पृ.34.

50) वही पृ.34.

51) वही पृ.37.

52) वही पृ.38.

53) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय पृ.18/19 सं.1966.

54) वही पृ. 19.

55) नरेंद्र शर्मा द्रौपदी पृ. 37. सं. 1986.

56) वही पृ. 67.

57) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय-पृ. 51/52 सं. 1966.

58) नरेंद्र शर्मा-द्रौपदी पृ. 42 सं. 1986.

59) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय पृ. 18. सं. 1966.

60) वही पृ.

61) नरेंद्र शर्मा- द्रौपदी पृ. 46. सं. 1986.

62) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय पृ. 44 सं. 1966.

63) नरेंद्र शर्मा द्रौपदी पृ. 40 सं. 1986.

64) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय पृ. 31 सं. 1966.

65) वही पृ. 28.

66) डॉ. धीरेन्द्र वर्मा-हिंन्दी साहित्य कोश भाग । पृ. 515.

67) नरेंद्र शर्मा- द्रौपदी पृ. 108 (मूल्यांकन) सं. 1986.

68) वही पृ. 27.

69) वही पृ. 36.

70) वही पृ. 28.

71) वही पृ. 38.

72) वही पृ. 42.

73) वही पृ. 29.

74) वही पृ. 44

75) वही पृ. 69.

76) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय पृ. 29 सं. 1966.

77) वही पृ. 31

78) वही पृ. 5 (भूमिका से उद्धृत)

79) वही पृ. 41.

80) वही पृ. 43.

81) वही पृ. 43.

82) वही पृ.39.

83) वही पृ.40.

84) वही पृ 9

85) हिंदी साहित्य कोश सं. डॉ. धीरेंद्र वर्मा भाग । पृ.67.

86) नरेंद्र शर्मा द्रौपदी पृ.39 सं. 1986.

87) वही पृ. 48.

88) वही पृ.67.

89) वही पृ.52.

90) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय- पृ.39. सं. 1966.

91) वही पृ.46.

92) वही पृ.53.

93) वही पृ.28.

94) वही पृ.23.

95) वही पृ.41.

96) वही पृ.22.

97) वही पृ.44

98) नरेंद्र शर्मा और उनका काव्य -लक्ष्मीनारायण शर्मा पृ 121.

99) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय पृ.17. सं 1966 सं.1967.

100) वही पृ.25.

101) वही पृ.25

103) वही पृ 33 आ पहुँचे धर्मराज---मधुसंचय।

104) हिंदी साहित्य कोश सं. धीरेंद्र वर्मा भाग । पृ.321.

105) नरेंद्र शर्मा 'आधुनिक कवि भाग 9' पृ.13 (भूमिका से उद्धृत)

106) नरेंद्र शर्मा द्रौपदी पृ. 28 सं. 1986

107) वही पृ.43.

108) वही पृ. 59.

109) वही पृ.29.

110) नरेंद्र शर्मा उत्तरजय पृ.38. सं. 1966.

111) वही. पृ 37

112) वही पृ. 38